International Journal of Humanities and Social Science Invention (IJHSSI)
ISSN (Online): 2319 – 7722, ISSN (Print): 2319 – 7714
www.ijhssi.org ||Volume 01 Issue 1 || December 2012 || PP 103-104

मेवाड़ भू–क्षेत्र में प्रचलित कुम्भकारी कला (रचना सौन्दर्य व सामाजिक सरोकर)

डॉ. गगन बिहारी दाधीच
प्राध्यापक–चित्रकला
एस. एम. बी. राजकीय महाविद्यालय
नाथद्वारा (राजस्थान)

हमारी सांस्कृतिक विरासत के उन्नयन में ग्राम–अंचल में पल्लवित लोक कलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। निःसन्देह, हमारा समाज ही इन लोक सांस्कृतिक कला वैभव का प्रेरणा स्त्रोत व रचना स्थली बना रहा, जिसके साक्ष्य हमें सिन्धुघाटी सभ्यता से लेकर वर्तमान के उत्तर आधुनिक काल के परिवेश में भी दिखाई देते हैं।

लोक अंचल में प्रचलित पारम्परिक कलाओं की इस परिधि में माटी से जुडी कुम्भकारी कला का अनशीलन करें तो यह रचनात्मक सत्य उजागर होता हैं कि बदलते सामाजिक परिवेश व भौतिकवादी जीवन शैली ने अन्य पारम्परिक व लोक कलाओं की भांति कुम्भकारी कला को भी प्रभावित किया है। फिर भी वर्तमान समय के आदिवासी व ग्रामीण समाज के दैनिक जीवन में आज भी कुम्भकारी कला के विविध रूप–स्वरूपों की उपयोगिता बराबर बनी हुई हैं। कुम्भकारी कला के इन पारम्परिक रूपाकारों में माटी से बने उपयोगी व सजावटी पात्रों के साथ ही धार्मिक अनष्ठानों में प्रयोगित होने वाले माटी के कलात्मक उपादान व प्रतिमाएं प्रमुख हैं।[1] निःसन्देह, मेवाड़ क्षैत्र में पल्लवित यह कुम्भकारी कला ग्राम विशेष की निजि पहचान भी बन चुकी हैं।[2]

मेवाड़ अंचल के ग्राम–कस्बों में प्रचलित कुम्भकारीकला में जहां लोक जीवन की आस्था का भाव रचा बसा दिखाई देता हैं, वहीं आदिवासी अंचल में बसे छोटे–छोटे गांवों में प्रचलित कुम्भकारी कला में आदिवासी समाज की आस्था व लोक जीवन शैली का मिला जुला रूप दृष्टिगोचर होता हैं।

मेवाड़ अचंल के ग्राम–कस्बों में कई ऐसे छोटे–बड़े केन्द्र हैं, जहां कुम्भकार परिवार जीविकोपार्जन के लिये आज भी माटी से भांति–भांति के रूप–स्वरूप आकारित कर रहें हैं। कुम्भकार परिवार दैनिक जीवन के उपयोग में आने वाले कलात्मक मृणपात्रों के साथ–साथ मांगलिक अनष्ठान व पूजन में प्रयोगित होने वाले कलात्मक उपादान व सजावटी कलारूपों को बना कर पीढ़ी दर पीढ़ी चली आ रही माटी की कला परम्परा को आगे बढ़ा रहे है।[3] निःसन्देह, कुम्भकारी कला के यह रूपाकार हमारी सामाजिक संस्कृति के परिचायक भी है तथा इनका सीधा सम्बन्ध मानव जीवन के सामाजिक सरोकारों से जुड़ा रहा हैं।

ग्राम–अंचल में बसे यह कुम्भकार भांति–भांति के मृद भाण्डों के साथ ही परात, तवा, हाण्डी, मलडा, कुलकी, भणाई व करवा आदि बनाते हैं तथा तीज–त्यौहार एवं शादी विवाह के लिये विशेष रुप से विविध आकार प्रकार के मांगलिक मृण पात्रों को रंगांकित भी करते हैं। यहीं नहीं, मेवाड़ के कई स्थलों पर कुम्भकार बाल–गोपालों के लिये कई प्रकार के खेल–खिलौने भी बनाते हैं, जिसकी बिक्री हाट–मेलों में अस्थायी दुकानें लगा कर की जाती है।

मेवाड़ की कुम्भकारी कला में विशेष रूप से मोलेला गांव की मृण कला का लौकिक व धार्मिक महत्व रहा हैं। मोलेला के कुम्भकार लगभग 500 वर्षो से माटी से ही लोक देवी–देवताओं की प्रतिमाएं बना कर वंशानुगत कला परम्परा को आगे बढा रहे हैं। 'हिंगाण' के रूप में प्रसिद्ध इन लोक देवी–देवताओं की प्रतिमाओं को राजस्थान, गुजरात व मध्यप्रदेश में बसे आदिवासी समाज के लोग भोपों के साथ मोलेला गांव आकर देवताओं प्रतिमाओं को खरीदते है और मनौती स्वरूप अपने ग्राम–अंचल के देवरों में विधि–विधान से स्थापित करते हैं।[4]

सदियों से कुम्भकारी कला को वशांनुगत रूप से आगे बढ़ाने वाले इन कुम्भकारों के मृण कला रूपों में हस्तलाघव व रचना सौन्दर्य का सम्मिलित रूप दिखाई देता है, साथ ही इनका सम्बन्ध सामाजिक सरोकारों से भी जुड़ा रहा हैं।

वर्तमान समय में देखे तो हमारे दैनिक व सामाजिक जीवन में भी कुम्भकारों द्वारा बनाए भांति–भांति के मृणपात्रों का महत्व बराबर बना हुआ हैं। दीपोत्सव, मांगलिक पर्व व अन्य तीज–त्यौहारों पर कुम्भकारो द्वारा बनाए मृणपात्रों की उपयोगिता हमारे सांस्कृतिक पक्ष के रूप में आज भी विद्यमान हैं।[5]

लोक देवी–देवताओं की प्रतिमाओं के लिये प्रसिद्ध मोलेला तथा काले रंग के बर्तनों (ब्लेक पॉटरी) के लिये लौकिक पहचान रखने वाले गोगुन्दा गांव के अलावा भी मेवाड़ भू–भाग में कई ऐसे स्थल हैं, जहां के कुम्भकार भांति–भांति के मृदभाण्डों (मटकों) के साथ ही त्यौहारिक व मांगलिक अवसरों के लिये विविध आकार प्रकार के मृणपात्रों की रचना करते हैं।[6] आज के वैश्वीकरण व भौतिकवादी जीवन शैली के परिवेश में देखे तो मानव के प्रारम्भिक जीवन से जुड़ी कुम्भकारी कला को क्रमबद्ध रूप से लिपिबद्ध करना तो आवश्यक हैं ही, उनके रचना सौन्दर्य एवं सामाजिक सरोकारों को रेखांकित करना भी महत्वपूर्ण है।

मेवाड़ भू–भाग का अध्ययन करें तो मोलेला व गोगुन्दा के साथ ही इस अंचल में आमली, कुंवारिया, आमेट, बाघपुरा, कुम्भलगढ़, चित्तौडगढ़, गिलुण्ड, जयसमन्द, आसपुर, कपासन, भेंसरोडगढ़, गंगरार, पुर, राजनगर, चारभूजा, केलवाड़ा, गोमती, देवगढ़, कैलाशपुरी, डबोक, गिलुण्ड, मातृकुण्डिया, नाथद्वारा, भीम, देलवाड़ा, खेमली, भूताला आदि ऐसे स्थल है, जहां आज भी कुम्भकारी कला परम्परा प्रचलन में हैं।[7]

विषय के इस क्रम के साथ ही इस तथ्य से भी इंकार नहीं किया जा सकता कि कुम्भकारी कला के प्रति हमारे समाज में महत्व कम होना शुरू हो गया है, जो भौतिकवादी जिन्दगी के साथ–साथ और भी कमतर होता जा रहा है।[8] सम्भवतः यही कारण हैं कि ज्यादातर कुम्भकार अपने बच्चों को इस पेशें से दूर रखना चाहते है और दूसरे व्यवसायों को भी अपना रहें हैं। जबकि सच यह हैं कि मृणकला के यह रूप–स्वरूप सदियों से हमारे सामाजिक–धार्मिक जीवन के अभिन्न अंग रहें हैं। यहीं नहीं, मानवीय सभ्यता से जुड़े कई साक्ष्य हमें इन पारम्परिक मृणपात्रों एवं मृण कला के रूपाकारों में दिखाई देते हैं।

संदर्भ –

1. अग्रवाल, वासुदेव शर्मा, टेराकोटा, जर्नल ऑफ द यूपी हिस्टोरिकल सोसाइटी, 1933, पृष्ठ 7, 8,11
2. पाण्डेय जयनारायण, भारती कला एवं पुरातत्व, पंचशील प्रकाशन, इलाहाबाद 1992 पृष्ठ 69, 131
3. जायसवाल एवं कल्याण कृष्ण, एन एथनो आर्कियालोजिकल सर्वे ऑफ इंडिया, वार्षिक रिपोर्ट, 1925–26, पृष्ठ 18 से 25
4. आकृति, वार्षिक अंक, राजस्थान ललित कला अकादमी, जयपुर, 2007, पृष्ठ 18–19
5. दाधीच, डॉ. गगन बिहारी, स्वर्णजयंति अंक, साहित्य मंडल, नाथद्वारा, 1996, पृष्ठ 96–98
6. जुगनू, डॉ. श्रीकृष्ण, मेंवाड़ की पुरातन कलाएं, स्वरसरिता, वाणीप्रकाशन, जयपुर, 2006, पृष्ठ 18–19
7. सिंह अरविन्द कुमार, प्राचीन भारतीय चित्रकला एवं मूर्तिकला, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1994, पृष्ठ 9, 47, 69
8. गौतम आर. बी., आकृति, वार्षिक अंक, राजस्थान की पारम्परिक कलाएं, राजस्थान ललित कला अकादमी प्रकाशन, जयपुर, 1998, पृष्ठ 46, 47, 48